उपसंहार

संगीत भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, जिसके साक्ष्य वैदिककालीन ग्रन्थों से प्राप्त होते है। वेदों से संगीत की प्राप्ती के पूर्ण साक्ष्य प्राप्त भी हुए है, और इसे सम्पूर्ण विश्व द्वारा भी स्वीकारा जाता है, जिससे भारतीय संस्कृति तथा संगीत का प्रभाव समस्त विश्व में देखने को मिलता है। प्रत्येक शोध किसी न किसी जिज्ञासा के ही फलस्वरूप किया जाता है, क्योंकि कुछ जानने के उद्देश्य से ही तथ्यों को एकत्र किया जाता है, जो उत्सुक्ता को भी जन्म देती है। प्रस्तुत शोधकार्य भी इसी उत्सुक्ता के ही फलस्वरूप किया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य का कार्य क्षेत्र ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक विषय को चुनने का कारण भारतीय धरोहर को जानना व ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन करने तथा ग्रन्थ की वर्तमान में महत्वता किस प्रकार है, इसका का ज्ञान प्राप्त होता है।

यदि ऐतिहासिक पक्षों के विषयों पर अध्ययन नहीं किया जाएगा, तो कुछ तथ्यों को सदैव किवदन्दियों के आधार पर ही स्वीकार किए जाते रहेंगें और अमूल्य संस्कृतिक धरोहर का कुछ स्थानों पर गलत अंकन होता रहेगा, इस लिए यह आवश्यक है, कि समस्त ग्रन्थों का अध्ययन किया जाए, जिससे संगीत के क्षेत्र में नवीन परिक्षणों को भी स्थान प्राप्त हो सके और उन्हें तर्कों के मध्यम से प्रमाणित भी किया जाए सके। संगीत रत्नाकर संगीत के क्षेत्र का सर्वमान तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो एक अत्यन्त वृहद ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है। संगीत रत्नाकर के विषय में संगीत के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी और गुनीजनों सभी के द्वारा जानना आवश्यक माना जाता है। संगीत रत्नाकर संगीत का वह महान रत्नाकर है, जिसमें संगीत जगत का प्रत्येक रत्न प्राप्त होता है। संगीत रत्नाकर को जाने बिना संगीत को समझपाना एक कठिन कार्य है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा 13वीं शताब्दी में रचित यह महान ग्रन्थ संगीत को अभूतपूर्व भेंट है, जिसमें संगीत के प्रत्येक पक्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा इस महान ग्रन्थ की रचना देवगिरि के यादव वंश के संरक्षण में की गयी, 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य का काल सिंहण नरेश का काल माना जाता है। इसी काल में संगीत रत्नाकर की रचना मानी जाती है। सिंहण नरेश स्वंय भी संगीत का प्रेमी था, जिसने अपने दरबार में कई महान संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान किया। इसी के फलस्वरूप भारत की सांस्कृतिक

धरोहर को संरक्षण प्राप्त हो सका और संगीत रत्नाकर जैसे महान संगीत ग्रन्थ की रचना सम्भव हो सकी।

शोधार्थी को ऐसा प्रतीत होता है, कि संगीत रत्नाकर संगीत के सभी छोटे–बड़े तथ्यों व ग्रन्थों का एक सम्मिलित ग्रन्थ है, जिस कारण इसे संगीत रत्नाकर कहा गया। जिस प्रकार छोटी–छोटी नदियां सभी एक समुद्र में मिलती है, और वह समुद्र कहलाता है, उसी प्रकार संगीत के सभी छोटे–बड़े सभी ग्रन्थों से मिलकर संगीत के इस महान ग्रन्थ की रचना सम्भव हो सकी। जिसे संगीत का समुद्र अर्थात् रत्नाकर कहा गया है। संगीत रत्नाकर एक अत्यंत वृहद ग्रंथ है, व शोधार्थी द्वारा शोध का विषय **"वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में संगीत रत्नाकर में वर्णित तंत्री वाद्यों का अध्ययन"** के संदर्भ में इस कार्य को प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी द्वारा संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में वर्णित तन्त्री वाद्यों को समझने व जानने के उद्योग से शोध प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध के विषय की आवश्यकता अनुसार ही संगीत रत्नाकर के सम्बन्ध में तथ्यों को एकत्र करने का प्रयास किया गया है। जिसके लिए संगीत रत्नाकर के उत्तम अनुवाद के रूप में वर्तमान में प्राप्त सुभद्रा चौधरी के अनुवाद को स्वीकारा जाता है, क्योंकि संगीत रत्नाकर के समस्त सातों अध्यायों को पूर्ण तथा विस्तार के साथ श्लोकों को वर्णित करने का कार्य सुभद्रा चौधरी जी द्वारा किया गया है, साथ ही डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग द्वारा भी संगीत रत्नाकर का अनुवाद पुस्तक के रूप में वर्णित किया गया है, जिसके मध्यम से शोधार्थी को कार्य की अवश्यकता के अनुसार संदर्भ पुस्तक के रू॰ में सहायता प्राप्त हो सकी है। साथ ही अन्य प्राप्त ग्रन्थों व पुस्तकों में जो संगीत रत्नाकर के रत्न प्राप्त हुए है, उन्हें भी संजोनें का प्रयास किया गया है।

13वीं शताब्दी में रचित इस महान ग्रन्थ में 13वीं शताब्दी तक के लगभग चालिस ग्रन्थों के ज्ञान व सार को संरक्षित किए हुए है, क्योंकि जिस काल में संगीत रत्नाकर की रचना की गयी है, उस काल में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता बाहरी आक्रान्ताओं के खतरें में थी और भारत आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी ओर से अपनी रक्षा करने का प्रयास कर रहा था, परन्तु आन्तरिक राज्यों में आपसी सामंजस्य न होने के कारण प्रत्येक बाहरी आक्रमण सफल होते गए और समस्त भारत में बाहरी शक्तियों का वर्चस्व स्थापित हो गया, जिसका कारण

मात्र राज्यों में होने वाला आपसी द्वेष की भावना था, और भारतीय सभ्यता व संस्कृति इन्हीं आक्रान्ताओं के हाथ की कठपुतली मात्र रह गया।

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय के अर्न्तगत 13वीं शताब्दी के भारत का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जैसे भारत के केन्द्र में किसका शासन था तथा भारत अन्य कितने छोटे–बड़े राज्यों में विभक्त था तथा इन सभी परिस्थितियों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा। उसे जानने तथा समझने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। भारत में 13वीं शताब्दी में गुलाम वंश की स्थापना हो चुकी थी और गोरी द्वारा गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत का कार्य भार सौप गजनी वापस चला गया तथा ऐबक द्वारा अपने मालिक के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य किया गया। ऐबक की मृत्यु के बाद इल्तुतमिश गद्दी पर बैठा। 1210 ई० से 1236 ई० के मध्य इल्तुतमिश द्वारा भारत की केन्द्र सत्ता पर शासन किया तथा इल्तुतमिश के बाद उसकी बेटी रज़िया सुल्तान 1236 ई० से 1240 ई० तक गद्दी पर रही और 1247 ई० में भारत की राजगद्दी पर नसिरूद्दीन का काल माना गया है, जो अन्य सरदारों की कठपुतलि मात्र था। इस क्रम में 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य जो कि संगीत रत्नाकर का काल माना जाता है, के समय भारत गुलाम वंश की केन्द्रीय सत्ता के अर्न्तगत था तथा साथ ही अन्य कई राज्य भी अपने–अपने स्वर्थ तथा वर्चस्व की लडाई में आपसी संघर्ष कर रहे थे। जिनमें पाण्ड्य, चेर, चोल, काकतीय, होयसल, देवगिरि के यादव इत्यादि सम्मिलित थे। देवगिरि के यादव वंश के संरक्षण में ही संगीत रत्नाकर की रचना की गयी। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय के अर्न्तगत 13वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक के प्राप्त ग्रन्थों का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय में पं० शारंगदेव को समर्पित है, जिन्हें संगीत रत्नाकर जैसे महान ग्रन्थ के रचयिता होने का गौरव प्राप्त है। पं० शारंगदेव जी के विषय में अर्थात् जीवन चरित्र के विषय में बहुत अधिक जानकारी किसी भी ग्रन्थ या पुस्तक में नहीं प्राप्त होती है। पं० शारंगदेव जी के विषय में जो भी जानकारी प्राप्त होती है, वह संगीत रत्नाकर में ही प्रथम अध्याय के अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी द्वारा स्वयं मंगलाचरण के पश्चात् श्लोक 2 से श्लोक 14 के मध्य तक ही प्राप्त होती है तथा दक्षिण के इतिहास तथा देवगिरि के इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् शोधार्थी को कुछ तथ्य प्राप्त हुए है, जिन पर प्रकाश डालने की आवश्यकता अवश्य महसूस होती है, जैसे पं० शारंगदेव जी तथा छंगदेव दोनों ही

सिंहण नरेश के दरबार के रत्नों में सम्मिलित थे, यदि नामों पर गौर किया जाए, तो प्रस्तुत नामों में काफ़ी समानता प्राप्त होती है। साथ ही दोनों के पितामह के नाम भी एक ही प्राप्त होते है अर्थात् दोनों के ही पितामह का नाम भास्कराचार्य प्राप्त होता है। इस प्रकार के प्रश्न शोधार्थी के मन में नवीन खोज हेतु प्रेरित करते है तथा पं० शारंगदेव के संगीत रत्नाकर का अध्ययन का प्रयास तो किया जाता है, परन्तु ग्रन्थकार के विषय में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार कुछ प्रकाश संगीत रत्नाकर के रचयिता की ओर आर्कषित करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा द्वितीय अध्याय में किया गया है।

इसके पश्चात् तृतीय अध्याय के अर्न्तगत सम्पूर्ण संगीत रत्नाकर का संक्षेप में वर्णित करने का प्रयास शोधार्थी के द्वारा किया गया है। जिसमें इस सप्ताध्यायी के स्वरविवेकाध्याय, रागाध्याय, प्रबन्धाध्याय, प्रर्कीणाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, तथा नृत्याध्याय का परिचय देने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। इसके पश्चात् चतुर्थ अध्याय के अर्न्तगत आधुनिक वाद्य वर्गीकरण तथा संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के वाद्य वर्गीकरण के साथ–साथ सम्पूर्ण वाद्याध्याय को वर्णित किया गया है, जिसमें वाद्याध्याय वर्णित वाद्य –तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों के सभी लक्षणों गुण–दोषों तथा वादकों के गुणों को भी वर्णित किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत वाद्य वर्गीकरण, वाद्य निरूपण, वादन अवसर, वाद्यों की बनावट, प्रकार सभी को पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार से कहा गया है।

प्रस्तुत शोध का मुख्य विषय संगीत रत्नाकर के तन्त्री वाद्यों पर आधारित है, जो प्रस्तुत शोध के पंचम अध्याय के अर्न्तगत वर्णित करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। जिसके अर्न्तगत शोधार्थी द्वारा तन्त्री वाद्यों का अर्थ तथा संगीत रत्नाकर वर्णित वाद्याध्याय के अर्न्तगत तन्त्री वाद्यों को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें दस तन्त्री वाद्यों एकतंत्री वीणा, नकुल वीणा, त्रितन्त्री वीणा, विपंची वीणा, चित्रा वीणा, मत्तकोकिला वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा तथा निःशंक वीणा को वर्णित करते हुए, वर्णित तन्त्री वाद्यों के वर्तमान स्वरूप तथा वर्तमान उपयोगिता को वर्णित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही वाद्य वादकों की जीवनी को भी प्रस्तुत किया, जिन्होनें भारतवर्ष का नाम विश्व का नाम विश्व के पटल पर स्थापित किया तथा भारतीय संस्कृति की समृद्धता से सम्पूर्ण विश्व को अवगत कराया।

अन्त में उपसंहार के पश्चात् संदर्भिका तथा एक परिशिष्ट को शोध प्रबन्ध में स्थान दिया गया है। प्रस्तुत परिशिष्ट में इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त पाण्डुलिपि को प्रस्तुत किया है,

जिसमें संगीत रत्नाकर में प्रथम अध्याय के मंगलाचरण तथा वाद्याध्याय के आरम्भिक श्लोकों को स्थान किया गया है।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध के लेखन के अन्त में शोधार्थी को यह प्रतीत होता है, कि भारत की ही समृद्ध संस्कृति को ही अन्य विदेशी आक्रान्ताओं तथा व्यपारियों द्वारा भारतीय वाद्यों को अपना कहा गया। शोधार्थी द्वारा जिन तन्त्री वाद्यों का अध्यायन किया गया तथा जो वर्तमान में प्रयोग किए जा रहे है, उनमें बहुत कुछ समानता है, क्योंकि सभी तन्त्री वाद्यों का मूल आधार पूर्णतः भारतीय ही है। विदेशी तथा मुस्लिम प्रभाव के कारण ही इन वाद्यों को विदेशी वाद्य के रूप में स्वीकारे जाने लगे, परन्तु जितने भी वाद्य है वह समस्त प्राचीन वाद्यों का ही स्वरूप का ही स्वरूप है। इस तथ्य को प्रत्येक भारतीय संस्कृति से जुड़े तथा भारतीय संगीतज्ञ द्वारा अपनाया जाना चाहिए, यदि इस तथ्य को समय पर नहीं स्वीकारा गया, तो भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप वैश्विकरण के इस युग में लुप्त होने की अवस्था भारतीय धरोहर के समक्ष एक विकट समस्या के रूप में आकर खड़ी हो जाएगी।

****